ISSN: 2456-9186, Vol. I, Issue. II, Sept-2017

वागर्थः
(An International Journal of Sanskrit Research)

सूतसंहिता में शैवदर्शनविषयक चिन्तन

Green Awasthi
Research Student, Department of Sanskrit
University of Delhi, DELHI- 110007
awasthigreen93@gmail.com

शोधसार- *भारतीय संस्कृति के सम्यक् परिशीलन के लिए पुराणों का अध्ययन अत्यावश्यक है। पुराण अपनी विविधविषयगूढता के कारण सदैव प्रासंगिक रहे हैं। पुराणज्ञान न केवल लौकिक विषयों की मीमांसा में अपेक्षित है अपितु वैदिक साहित्य के परिज्ञान में भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। अतः महाभारत में कहा गया है-* ***इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।***[1]. *अष्टादश पुराणों में स्कन्दपुराण शैवपुराणों में परिगणित है। स्कन्दपुराणीय सूतसंहिता भी अपनी दार्शनिक सुस्पष्टता के कारण पुराणसाहित्य में विशेष स्थान रखती है। सूतसंहिता में प्रतिपादित शैवदर्शन के तत्त्वों पर प्रस्तुत शोधपत्र में चिन्तन किया गया है।*

मूलशब्द- पुराण, स्कन्दपुराण, शैवदर्शन, सूतसंहिता, शिव, स्पन्द, विद्यातत्त्व, परा, अपरा, मुक्ति।

प्रस्तावना

पुराण संस्कृतवाङ्मय के महत्वपूर्ण अङ्ग हैं । पुराणों की दार्शनिक दृष्टि सर्वव्यापिनी तथा विविध दर्शनतत्त्वसमन्विता है । स्कन्दपुराण सभी पुराणों में बृहत्तम है । स्कन्दपुराण षट्संहितात्मक है- सनत्कुमारसंहिता, सूतसंहिता, शंकरसंहिता, वैष्णवसंहिता, ब्रह्मसंहिता एवं सौरसंहिता। इन छः संहिताओं में स्वयं के दार्शनिक पक्ष की सुस्पष्टता के कारण सूतसंहिता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शैवदर्शन का सर्वतोभावेन प्रामाणिक ग्रन्थ सूतसंहिता है। तात्पर्यदीपिकाकार माधवाचार्य ने अनेक स्थलों पर दुर्लभ शैवागमों का प्रमाण देते हुए इसे बोधगम्य बनाया है तथा अद्वैत के आचार्यों के उद्धरणों द्वारा इसका दार्शनिक पक्ष भी सुस्पष्ट व परिष्कृत किया है। सूतसंहिता में शैवदर्शन के अनेक विषयों पर गहन चिन्तन किया गया है। यथा- शिवतत्त्व, शिव के पञ्चविधरूप, परापरा विद्या, मुक्ति, मुक्तिभेद-समन्वय इत्यादि।

I. शैवदर्शन की मान्य परम्परा

शैव सिद्धान्त के उद्गम के सम्बन्ध में यह कथन प्रचलित है कि परमशिव ने अद्वैतमत के प्रचार के लिए दुर्वासा को अद्वैतपरक शैवदर्शन के प्रचार करने हेतु कहा। दुर्वासा ने अम्बकादित्य नामक मानस-पुत्र को जन्म दिया। अम्बकादित्य द्वारा प्रवर्तित होने के कारण यह शास्त्र अम्बकशास्त्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। अम्बकादित्य की परम्परा में सोलहवीं पीढी में संगमादित्य हुए। संगमादित्य ने कश्मीर में ही अपना निवास स्थान बनाया। संगमादित्य की परम्परा में ही वर्षादित्य, अरुणादित्य, आनन्द एवं सोमानन्द हुए। [2]. संगमादित्य की चतुर्थ पीढी में 800ई. में सोमानन्द नाम के प्रसिद्ध तान्त्रिक विद्वान् हुए। सोमानन्द ने ही सुप्रसिद्ध ग्रन्थ शिवदृष्टि का प्रणयन किया। इसी परम्परा में राजानक रामकण्ठ नामक आचार्य हुए। इन्होंने कल्लटप्रणीत स्पन्दकारिका की विवृत्ति तथा भगवद्गीता का विवरण प्रस्तुत किया है। भगवद्गीता-विवरण से यह ज्ञात होता है कि वे मुक्ताकण के अनुज एवं उत्पलदेव (825-850 ई.) के शिष्य थे। [3]. इसी आचार्य-परम्परा में आगे उत्पलाचार्य एवं उनके शिष्य लक्ष्मणगुप्त तथा उनके शिष्य अभिनवगुप्त हुए। भारतीय वाङ्मय में अभिनवगुप्त ही एकमात्र ऐसे परमाचार्य हैं जिन्होंने काव्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र एवं तन्त्रशास्त्र के क्षेत्र में अद्भुत कीर्ति प्राप्त की। अभिनवगुप्त शैवदर्शन के प्रतिष्ठित आचार्य हुए। इनके बाद भी क्षेमराज आदि आचार्यों की शैवदर्शन में सुदीर्घ परम्परा रही है।

II. शिव की अवधारणा

सूतसंहिता के शिवमाहात्म्यखण्ड के द्वितीय अध्याय में शिव ही सम्पूर्ण जगत् का कर्त्ता स्वीकृत है। शिव की माया से ही सम्पूर्ण जगत् का संचालन होता है और यह जगत् भी शिवस्वरूप है। वेदान्तवाक्यजन्यज्ञान से शिवस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर पशु (जीवात्मा) संसार-बन्धन से मुक्त होता है। शिव में ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और विनष्टि होती है।

अहमेको जगद्धातुरासं प्रथममीश्वरः।

वर्तामि च भविष्यामि न मत्तोऽन्योस्ति कश्चन॥[4].

III. शिव के पञ्चविधरूप

यद्यपि संहिता तात्त्विक दृष्टि से शिव को सत्य, ज्ञान, विकाररहित एवं अद्वितीय तत्त्व मानती है तथापि व्यावहारिक दृष्टि से शिव की शक्ति से विभक्त उनके पाँच रूपों का भी वर्णन करती है।

एक एव शिवः साक्षात्सत्यज्ञानादिलक्षणः।
विकाररहितः शुद्धः स्वशक्त्या पञ्चधा स्थितः॥[5].

संहिता के अनुसार शिव के पाँच रूप हैं- ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव एवं सद्योजात। शिव की जिस शक्ति से उनका रूप विभाजन होता है वह शक्ति भी पाँच प्रकार की है- सर्जन, पालन, संहरण, तिरोभाव एवं अनुग्रह। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाँच तन्मात्राएं ही ईशानादि संज्ञा को प्राप्त होती हैं।

तत्रैवं सति शब्दस्तु साक्षादीशानसंज्ञितः।
शब्दस्तत्पुरुषो रूपमघोरपरिकीर्तितः।।[6].

सम्पूर्ण संसार परमात्मशिव की शक्ति का कार्य है और सृष्टि के अन्त में समग्र संसार संकुचित होकर उसी परमात्मशिव में विलीन हो जाता है। सूतसंहितामीमांसा के अनुसार उस समय शिव का परम रूप ही एक मात्र अवशिष्ट रहता है। वस्तुत: औपनिषदिक ब्रह्म ही शैवदर्शन के परिप्रेक्ष्य में संहिता में परमशिव के रूप में वर्णित है।

IV. सूतसंहिता में विद्यातत्त्व

'विदन्ति अनया' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'विद्या'शब्द ज्ञान, शिक्षा, विज्ञान, यथार्थज्ञान और अध्यात्मज्ञान अर्थ में प्रयुक्त होता है। सूतसंहिता अक्षरब्रह्म के प्रतिपादन के प्रसंग में परा तथा अपरा इन दो प्रकार की विद्याओं का वर्णन करती है। सूतसंहिता का यह प्रसंग मुण्डकोपनिषद् में प्रतिपादित 'परा' एवं 'अपरा' इन द्विविध विधाओं से उपजीवित है।

A. **अपरा विद्या**- इसके अन्तर्गत आने वाले तत्त्व हैं- ऋग्वेदादि चारों वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस्, ज्योतिष तथा अनात्मविषया बुद्धि।

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापराऽपि च।
तत्रापरा तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च॥
सामवेदः तथाथर्ववेदः शिक्षा सुरर्षभाः।
कल्पो व्याकरणञ्चैव निरुक्तं छन्द एव च॥
ज्योतिषञ्च तथाऽनात्मविषया अपि बुद्धयः॥ [7].

विद्या के भेद एवं अपराविद्या के स्वरूप के सम्बन्ध में सूतसंहिता अविकल रूप से मुण्डकोपनिषद् का अनुसरण करती है किन्तु अपराविद्या में संहिता की उपनिषद् से एक विषय में भिन्नता है। मुण्डकोपनिषद् ने वेद और वेदाङ्ग के अतिरिक्त अनात्मविषया बुद्धि को भी अपरा विद्या की संज्ञा दी है किन्तु टीकाकार की सम्मति में यह भी वेद-वेदाङ्ग-विषयक होने के कारण कोई नूतन विषय नही है तथा ऋग्वेदादि श्रुति परिगणित अपराविद्या अनात्मविषयक होने से अद्वितीय तत्त्व का प्रतिपादन नहीं कर सकती। अत: उससे उत्पन्न बुद्धि भी अग्निहोत्रादि-कर्मविषयक होने से अनात्मविषयक होने से अपरा विद्या ही है। [8].

B. **पराविद्या-** पराविद्या के विषय में संहिता एवं मुण्डकोपनिषद् एकमत हैं। मुण्डकोपनिषद् में अक्षरतत्त्व को प्राप्त करने के साधन को पराविद्या कहा गया है- **अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।**[9]. सूतसंहिता के अनुसार 'परा' विद्या वह है जिससे संहिता में विवेचित अक्षरतत्त्व का यथार्थ ज्ञान होता है। वह "तत्त्वमसि" आदि उपनिषद्वाक्यजनितविद्या द्वारा अक्षरतत्त्व का बोध होने से आत्मविषयक अज्ञाननिवृत्ति द्वारा मोक्ष का साधन होने से परा कही जाती है- **अथैषा पराविद्या सा यया तत्परमक्षरम्।**[10].

प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक डा. राधाकृष्णन का 'भारतीय दर्शन'नामक पुस्तक में पराविद्या और अपराविद्या के सम्बन्ध में स्पष्ट अभिमत है कि परम सत्य का नाम पराविद्या है। इसकी विषयवस्तु आत्मा का एकत्व तथा उसी की एकमात्र यथार्थ सत्ता है। व्यावहारिक सत्य अथवा अपराविद्या सर्वथा असत्य नहीं है। यह वह सत्य है जो सांसारिक चैतन्य के दृष्टिकोण से देखा जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शास्त्रविद्या 'अपरा' तथा आत्मविद्या 'परा' है। अपरा का प्रतिपाद्य विषय वेदादि शास्त्र हैं तथा परा का प्रतिपाद्य विषय उपनिषदोक्त आत्मतत्त्व है। अपरा शास्त्रविद्या की उपलब्धि में तथा परा आत्मविद्या की उपलब्धि में साधन मानी जाती है।

V. सूतसंहिता एवं मुक्ति की अवधारणा

मानव जीवन में पुरुषार्थचतुष्टय का विशेष महत्त्व है और अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष ही जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। जीव की मुक्तिप्राप्ति ही भारतीय दर्शन का चरम उद्देश्य है। सूतसंहिता में भी तत्त्वज्ञान का अनुसन्धान इसलिए किया जाता है कि उसके द्वारा जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। मुक्ति का विवेचन समस्त दर्शनों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है। मुक्ति एवं मुक्तिप्राप्ति के साधनों का वर्णन भारतीय दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहा है।

सूतसंहिता के अनुसार निर्विकल्पक-समस्तोपाधिरहित, सत्य, ज्ञान और आनन्दैकरसस्वरूप परब्रह्म में श्रवणादि साधनजनित विद्या से अज्ञान निवृत्ति के अनन्तर विषयान्तर के अभाव में विक्षेप-वासनारहित चित्तवृत्ति का विश्राम ही मुक्ति है। [11].

निर्विकल्पे परे तत्त्वे विद्यया बुद्धिविश्रमः।
सा हि संसार विच्छित्तिर्नापरा पुरुषाधिका॥[12].

सिद्धान्तरूप में सूतसंहिता परमतत्त्व में चित्तवृत्ति की परमविश्रान्ति को मुक्ति मानती है और इस विश्रान्तिरूप मुक्ति में अज्ञान की निवृत्ति के कारण ज्ञान को हेतु स्वीकार करती है। अभिनवगुप्त ने 'स्वस्वरूपप्रथन' को मोक्ष की संज्ञा दी है- **मोक्षो हि नाम नैवान्यः स्वस्वरूपप्रथनं हि सः**।[13]. स्वस्वरूपप्रथन का अर्थ है- शिव के यथार्थ रूप अर्थात् स्वातन्त्र्यशक्ति से सम्पन्नरूप की प्रतीति। मुक्त जीव की दो अवस्थाएं होती हैं- जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति। जीवन्मुक्ति की भी दो अवस्थाएं होती हैं- प्रथम समाधि की अवस्था, जिसमें उपासक अन्तर्मुखी होकर शिव में लीन हो जाता है। द्वितीय व्युत्थानावस्था है, जिसमें उपासक सांसारिक दृश्य को देखकर भी भ्रान्त नहीं होता क्योंकि उसे मिथ्यात्व का स्थायी बोध हो जाता है।[14]. वह अनासक्त भाव से प्रारब्ध-कर्मवश शरीरधर्म का निर्वाह करता है। वह 'संकीर्णोऽहम्' की अन्धानुरक्ति एवं धार्मिक कृत्यों की सीमा से ऊपर उठकर सबको आत्मवत् समझता है। सूतसंहिता भी जीवन्मुक्ति के सम्बन्ध में यही दृष्टि रखती है। संहिता के अनुसार आत्मतत्त्व में सर्वार्थतत्त्व की भावना 'जीवन्मुक्ति' कहलाती है।

यस्य मुक्तिरभिव्यक्ता स्वात्मसर्वार्थवेदिनी।
तस्य प्रारब्धकर्मान्तं जीवन्मुक्तिः प्रकीर्तिता॥[15].

प्रारब्धकर्म की शक्ति समाप्त होने से उसका फल भी समाप्त हो जाता है। मुक्तात्मा भौतिक उपाधियों से अलग होने से अर्थात् स्थूल एवं सूक्ष्म उभयविध शरीर के अन्त हो जाने से उसका पुनर्जन्म नहीं होता अपितु वह ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही विदेहमुक्ति की अवस्था है। [16].

VI. सूतसंहिता एवं मुक्तिभेद समन्वय

सूतसंहिता के मुक्तिखण्ड के द्वितीय अध्याय में पाँच प्रकार की मुक्तियों का वर्णन है- सालोक्यमुक्ति, सामीप्यमुक्ति, सारूप्यमुक्ति, सायुज्यमुक्ति एवं परमामुक्ति। इष्टलोक में निवासप्राप्ति सालोक्यमुक्ति है। इष्ट के लोक में शिव के निकट उपस्थित रहना सामीप्यमुक्ति है। इष्ट के समान ऐश्वर्यादि रूपों की प्राप्ति सार्ष्टिमुक्ति या सारूप्यमुक्ति है। इष्टतादात्म्यलाभ सायुज्यमुक्ति है। तथा सर्वविशेषरहित निरज्ञान आनन्दावस्थिति परमामुक्ति है।

बहुधा श्रूयते मुक्तिर्वेदान्तेषु विचक्षण।
एका सालोक्यरूपोक्ता द्वितीया कमलेक्षण॥
सामीप्यरूपा सारूप्या तृतीया पुरुषोत्तम।
अन्या सायुज्यरूपोक्ता सुखदुःखविवर्जिता॥[17].
प्रतिबन्धविनिर्मुक्ता सर्वदा परमार्थतः।
अविचारदशायां तु प्रतिबद्धा स्वमायया॥
एषैव परमा मुक्तिः प्रोक्ता वेदार्थवेदिभिः।
अन्याश्च मुक्तयः सर्वा अवराः परिकीर्तिताः॥[18].

सूतसंहिता इन पंचविध मुक्तियों को भी परा और अपरा में विभक्त करती है, जिनमें प्रथम चार कर्मफलभूता होने के कारण अपरा-मुक्ति और अन्तिम ज्ञानफलभूता होने से ब्रह्मरूपा परा-मुक्ति कही गयी है। मुक्तिभाव की अनिर्वचनीयता का निर्देश करके अन्ततः संहिता मुक्ति में स्वानुभूति पर ही विशेष बल देती है।

मुक्तिस्वभावो वेदान्तैर्मया च परिभाषितम्।
अशक्त्या स्वानुभूत्या च मौनमेवात्र युज्यते॥[19].

सूतसंहिता मुक्तिविषयक अनुभूति में औपनिषदिक विचारधारा से विशेष प्रभावित है। वेदान्त का निर्णय है कि अज्ञाननाश से मुमुक्षु को पारमार्थिक तादात्म्यरूप परामुक्ति की अनुभूति होती है। [20]. सूतसंहिता का यह स्पष्ट कथन 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति', 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'अयमात्मा ब्रह्म' आदि औपनिषदिक महावाक्यों के प्रति महती आस्था का प्रतीक है। इन महावाक्यों से यही समर्थित होता है कि आत्मा और शिव में कोई भेद नहीं है।[21]. प्रारब्धकर्म की परिसमाप्ति होने पर साधक पञ्चभौतिक शरीर का परित्याग कर परमात्मशिव में विलीन हो पूर्ण शिवत्व को प्राप्त करता है। यही परामुक्ति की अवस्था है।

यस्य स्वभावभूतेयं मुक्तिः साक्षात्परा हरे।
अभिव्यक्ता स एवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥[22].

उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि सूतसंहिता में मुक्ति तथा मुक्तिभेदविषयक धारणा उपनिषद् एवं शैवदर्शनसम्मत है।

उपसंहार

जिन पुराणों में कथाओं की अपेक्षा दर्शनांश का प्राधान्य है, उनमें स्कन्दपुराण की सूतसंहिता अन्यतम है। संहिता परमशिव से जगत् का आविर्भाव मानती है अतः इस दृष्टि से यह शैवदर्शन के सन्निकट प्रतीत होती है। संहिता शिव के पञ्चविध रूपों की चर्चा शिव के पञ्चकृत्यों के आधार पर करती है। इसमें विद्या का परा एवं अपरा भेद अविकल रूप से मुण्डकोपनिषद् से सम्बन्धित है तथा संहिता अनात्मविषया बुद्धि को भी अपरा कहती है। परमतत्त्व शिव में चित्तवृत्ति की परमविश्रान्ति को मुक्ति माना गया है। सूतसंहिता औपनिषदिक विचारों की छाया में शिवतत्त्व में सत्यत्व और यावज्जगत् में अनित्यत्व सिद्ध करती है तथा सिद्धान्ततः शिव और जगत् में तात्त्विक भेद को अस्वीकार कर देती है। अतः स्पष्ट होता है कि दार्शनिक तथ्यों के विवेचन में सूतसंहिता, उपनिषद् एवं शैवदर्शन के सिद्धान्तों का निरूपण विस्तार से करती है।

सन्दर्भ

[1]. वेदव्यास. महाभारत. आदिपर्व-1/267. नाग प्रकाशन , दिल्ली ,जवाहर नगर. सन् 1988.

[2]. सोमानन्द. शिवदृष्टि. 6/114-120. काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् 1934.

[3]. डॉ. राममूर्तिशर्मा. भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा, पृ.सं. 569. अमृत प्रिंटिंग वर्क्स, मालरोड, कैम्प, दिल्ली. सन्1999.

[4]. सूतसंहिता, शिवमाहात्म्यखण्ड,अध्याय-2.संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठप्रकाशन, वाराणसी. सन्1999.

[5]. सूतसंहिता, यज्ञवैभवखण्ड, अध्याय-14/2. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठप्रकाशन, वाराणसी. सन्1999.

[6]. सूतसंहिता, यज्ञवैभवखण्ड, अध्याय-14/4-5. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठप्रकाशन, वाराणसी. सन्1999.

[7]. सूतसंहिता, यज्ञवैभवखण्ड, ब्रह्मगीता, अध्याय-7/3-4. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठप्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999. THE SAME SPELLING MISTAKE COPIED AT EVERY INSTANCE

[8]. सूतसंहिता, तात्पर्यदीपिका टीका, यज्ञवैभवखण्ड, ब्रह्मगीता, अध्याय-7/4. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठप्रकाशन, वाराणसी. सन्1999.

[9]. मुण्डकोपनिषद्- 1/1/5, पृ. सं. 232. ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार- हरिकृष्णदास गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर, सम्वत 2069.

[10]. सूतसंहिता, यज्ञवैभवखण्ड, ब्रह्मगीता, अध्याय-7/5. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठप्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[11]. सूतसंहिता, तात्पर्यदीपिकाटीका, यज्ञवैभवखण्ड, ब्रह्मगीता, अध्याय-9/23. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[12]. सूतसंहिता, यज्ञवैभवखण्ड, ब्रह्मगीता, अध्याय- 9/23. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[13]. अभिनवगुप्त. तन्त्रालोक-1, पृ.192. श्रीनगरग्रन्थमाला, कश्मीर.सन्1918.

[14]. रमाकान्त झा. सूतसंहितामीमांसा, पृ.सं. - 229. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी. सन् 1999.

[15]. सूतसंहिता, मुक्तिखण्ड, अध्याय- 2/54. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठप्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[16]. दत्ता एवं चटर्जी. भारतीय दर्शन. पृ.सं.- 423. पुस्तक महल, पटना. सन् 1969.

[17]. सूतसंहिता, मुक्तिखण्ड, अध्याय- 2/28-29. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[18]. सूतसंहिता, मुक्तिखण्ड, अध्याय- 2/34-35. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[19]. सूतसंहिता, मुक्तिखण्ड, अध्याय- 2/61. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[20]. सूतसंहिता, मुक्तिखण्ड, अध्याय- 2/52. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.

[21]. रमाकान्तझा, सूतसंहितामीमांसा, पृ.सं. -232. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी. सन् 2005.

[22]. सूतसंहिता, मुक्तिखण्ड, अध्याय-2/53. संपादक- स्वामी स्वयं प्रकाश गिरि. दक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी. सन् 1999.